Volume-II, No. 1, Feb -2015, pp. 1-7

मानव जीवन में मूल्य शिक्षा एवं शांति शिक्षा का महत्व

डा. वीरेन्द्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
दुर्गा प्रसाद बलजीत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अनूपशहर
बुलन्दशहर, उत्तर–प्रदेश, भारत।

साराशं

मानव स्वभाव की यह अनोखी विडम्बना है कि उसकी तीव्र लालसा जहाँ उसे हथियार उठाने, युद्ध करने और निरन्तर संघर्ष करने की उत्तेजना प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर मानव जीवन भर असीम शांति की मृगतृष्णा में भटकता रहता है। इतिहास ऐसे अनेकानेक उदाहरणों से भरा पड़ा है, जबकि युद्ध के बाद शांति का मार्ग खोजा गया व एक लम्बी शांति के बाद युद्ध की चिंगारी भड़क उठी, अर्थात् मानव स्वभाव का दैत्य पक्ष उसे युद्ध में संलग्न कर देता है, वही उनके स्वभाव का दैवीय पक्ष उसे शांति के सन्मार्ग की ओर अग्रसर करता है। ज्यों–ज्यों मानव सभ्यता ने वैज्ञानिक तकनीकी व भौतिक विकास करते हुए आधुनिकतम रूप को प्राप्त किया है, वैसे–वैसे परमाणु रासायनिक व जैविक हथियारों के निरन्तर विकास ने मानव जाति को बारूद के ढेर पर बैठा दिया है। जहाँ एक चिंगारी ही समूचे नाश के लिए काफी होगी। ऐसे वातावरण में मानव जाति एवं सभ्यता की सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि विश्व के समस्त देशों के नागरिको के बीच मधुर सम्बन्धों का विकास हो, सौहार्दपूर्ण वातावरण का विकास हो, सह–अस्तित्व, सहिष्णुता की भावना का विकास हो तथा विश्व–शांति की स्थापना हो। विश्व–शांति की स्थापना के आदर्श लक्ष्य के लिए ही शांति–शिक्षा की अवधारणा का जन्म हुआ। शांति–शिक्षा जिसके महत्व को आज तीव्रता से महसूस किया जा रहा है, जिसके प्रचार–प्रसार के लिए बड़े पैमाने पर प्रयास किये जा रहे हैं, तथा इसे शिक्षा के स्वरूप के साथ जोड़ा जा रहा है।

शांति–शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्तमान समय में शांति–शिक्षा को एक लक्ष्य के रूप में सार्वभौमिक स्तर पर स्वीकार कर लिया गया है। सर्वप्रथम 1945 में संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में मानवाधिकारों व मौलिक स्वतंत्रता के उल्लेख को शांति–शिक्षा हेतु प्रथम भूमिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के समक्ष यह विचारणीय प्रश्न के रूप में एक विकट समस्या उभरकर सामने आई कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों व नागरिकों के बीच समझ, सहयोग एवं समन्वय को कैसे स्थापित किया जाये? इसके समाधान हेतु अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की बात सामने आई। इस प्रकार 'शिक्षा' जिसे सम्पूर्ण विश्व के सभी देशों द्वारा समान रूप से महत्ता प्रदान करते हुए स्वीकार की जाये। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता ने शांति शिक्षा की अवधारणा को जन्म दिया और ये माना जाने लगा कि अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा के संदर्भ में 'शांति–शिक्षा' प्रयुक्त की जा सकती है।

1974 में यूनेस्को प्रस्ताव के अंतर्गत शांति–शिक्षा के निमित्त प्रमुख विषय के रूप में चयनित किया गया शिक्षा में आलोचनात्मक विश्लेषण को शामिल किया जाना चाहिए जो विभिन्न देशों में आर्थिक व राजनीतिक वातावरण के ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विवादों एवं तनावों पर साथ–साथ अध्ययन करते हुए इन विवादों एवं तनावों पर नियन्त्रण स्थापित कर सके। वे तनाव व विवाद जो वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व विश्व–शांति के विकास में बाधायें है। शिक्षा मुख्य रूप से लोगों की वास्तविक व प्रतिस्पर्धा रहित रूचि पर जोर देने वाली होनी चाहिए।

वर्तमान समय में आज समूचा विश्व व्यापक अर्थो में विश्व शांति शिक्षा को स्वीकार कर रहा है व विभिन्न देशों के मध्य बढ़ती जा रही अन्तनिर्भरता मानवीय इच्छाओं में वृद्धि, आर्थिक प्रतिस्पर्धा व औद्योगिक सहभागिता को केवल मात्र शांति शिक्षा के द्वारा ही नियन्त्रित किया जा सकता है।

शांति शिक्षा के सिद्धान्त

विश्व राष्ट्र संघीय अध्यापक संघ के कार्यवाहक समूह ने अक्टूबर 1983 में पेरेगुआ में शांति शिक्षा के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों को स्वीकार किया जो निम्नलिखित हैं–

➢ शांति की आवश्यकता एवं सम्भावनाएँ– इसके अंतर्गत दो चीजों का समावेश होता है। प्रथम शांति की आवश्यकता तथा सम्भावनाएँ, दूसरा शांति शिक्षा हेतु पहल करना आवश्यकता एवं सम्भावनाओं को जानने के बाद तुरन्त यथोचित कार्यवाही करना।

➢ आत्मनिर्भरता हेतु जागरूकता– इस सिद्धान्त के अंतर्गत समाज में रहने वाले नागरिकों को आत्मनिर्भर होने के लिए जागरूक बनाना।

➢ सामाजिक समस्याओं के निवारणार्थ प्रयास– इस सिद्धान्त के अंतर्गत समाज के नागरिकों में आर्थिक सामाजिक जटिलताओं, अशिक्षा, बेरोजगारी, धार्मिक कट्टरता, राजनीतिक अपरिपक्वता के निवारणार्थ प्रयत्न किया जाना चाहिए। आपसी प्रेम एवं सद्भाव को विकसित किया जाना चाहिए।

➢ उत्तरदायित्वों का समुचित निर्वहन– बालकों, युवाओं और व्यस्कों में अतीत व भविष्य के झगड़ों के वास्तविक कारणों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति समझ का विकास करना। इस प्रकार की राजनीतिक व आर्थिक प्रक्रिया को नेतृत्व प्रदान करना जो युद्ध की सम्भावनाओं पर विजय प्राप्त कर सकें।

➢ नागरिकों में राष्ट्रीय सद्भाव एवं आपसी सहयोग हेतु प्रेरणा– सामाजिक एवं राष्ट्रीय उन्नयन हेतु नागरिकों में सच्चरित्रता, सद्भावना, अहिंसा, सच्चाई, कर्तव्यनिष्ठता आदि सदगुणों के प्रति प्रेरणा उत्पन्न करना।

➢ शांति शिक्षा का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण–वैज्ञानिक तकनीकी आविष्कारों व शक्तिशाली संचार माध्यमों के कारण आज विश्व सिमटता जा रहा है। आज विश्व के सभी देश एक दूसरे के अति निकट हैं व एक दूसरे पर निर्भर है। वर्तमान समय की सामाजिक व शैक्षिक स्थिति का अवलोकन करने के पश्चात यह आवश्यक हो गया है कि शांति–शिक्षा के प्रयास किये जायें। मात्र राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विचार करना होगा। द्वितीय विश्व युद्ध के भयावह महाविनाश के पश्चात उसकी पुनरावृत्ति रोकने के लिए, मूल्यों की वृद्धि हेतु, भावात्मक एकता हेतु शांति–शिक्षा आवश्यक है। इसी के माध्यम से 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा को विकसित किया जा सकता है। आज विश्व के सभी देशों में असहिष्णुता व अनुदारता कम करने की आवश्यकता है, मानव जाति के रक्षणार्थ शांति–शिक्षा की स्थापना आवश्यक है, इसके लिए सबसे सशक्त माध्यम शिक्षा ही है।

विश्व शांति की स्थापना हेतु आवश्यकता इस बात की है कि सभी नागरिकों में एक दूसरे के प्रति सकारात्मक भावना उत्पन्न की जाये, इससे मानव जाति का अस्तित्व सुरक्षित रह सकेगा। शांति शिक्षा के विकास हेतु अन्तर्राष्ट्रीय संगठन 'यूनेस्को' ने एक प्रारूप प्रस्तावित किया है। जिसके मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं–

➢ विश्व के समस्त देशों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में विचारों के आदान–प्रदान को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ये कार्य शैक्षिक, वैज्ञानिक व सांस्कृतिक प्रगति के प्रतिवेदनों के माध्यम से किया जाना चाहिए।

➢ इस संगठन द्वारा 'अशिक्षा' जो कि अन्तर्राष्ट्रीय सोच के विकास में विश्व स्तर पर सबसे बड़ी बाधा के रूप में हमारे सामने आई है इस बाधा को दूर करने के उपाय भी बतलाये गये हैं।

➢ अन्तर्राष्ट्रीय समझ का विकास करने के लिए परस्पर विभिन्न देशों में शैक्षिक सम्मेलनों, सांस्कृतिक उत्सवों, खेलों आदि का आयोजन किया जाना चाहिए।

➢ अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक है कि विश्व के समस्त नागरिक एक दूसरे के प्रति असहिष्णु विचारों व संकीर्ण राष्ट्रवाद का त्याग कर एक दूसरे को उनकी विभिन्नताओं के साथ अपनाते हुए वैश्विक संस्कृति की ओर अग्रसर हों। इस हेतु, शांति शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

महान शिक्षाविद् एवं दार्शनिक डा0राधाकृष्णन ने अन्तर्राष्ट्रीयता की महत्ता को स्पष्ट करते हुए अपना विचार निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है–''विश्व एक बार महाद्वीपों व महासागरों में बँट गया, किन्तु भौतिक रूप से यह एक है लेकिन अभी भी संदेह एवं गलतफहमियाँ हमारे बीच है। यह हमारे लिए जरूरी है कि हम एक हिस्सा होकर न जीयें, बल्कि साथ–साथ जीयें एक दूसरे को समझें, एक दूसरे के भय, निराशा, आकांक्षाओं तथा विचारों को जानें।''

शांति शिक्षा हेतु भावात्मक एकता–भारतीय जनता में विचार, कर्म एवं दृष्टिकोण की सदैव काफी विविधता रही है, पर यह विविधता भारतीय माने जाने वाले सामाजिक ढाँचे के भीतर ही थी। जब मेगस्थनीज और फाहयान भारत आये, तब उन्होनें यहाँ कि अनेक जातियों और सम्प्रदायों को विभिन्न प्रकार की जीवन पद्धतियों का अनुकरण करते हुए पाया फिर भी उन्होंने उन लोगों को भारतीय जनता ही माना। बाबर ने भी इस भारतीय चरित्र को स्वीकार किया और संसार के अन्य स्थानों की जीवन–पद्धतियों से उसका अंतर बताने के लिए उसे 'हिन्दुस्तानी जीवन–पद्धति' की संज्ञा दी। इस सम्बन्ध में हुमायूँ कबीर के विचार दृष्टव्य है–''भारत में भावात्मक राष्ट्रीय एकता कुछ न कुछ मात्रा में सदैव रही है।''

भावात्मक एकता का अर्थ– देश या राष्ट्र के सभी निवासियों में विचारों एवं भावनाओं की एकता। इसके अर्थ को और स्पष्ट करने के लिए विभिन्न मनीषियों के विचार उल्लेखनीय है।

➢ भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू जी के अनुसार–''भावात्मक एकता का अभिप्राय हमारे विचारों व भावनाओं की एकता तथा पृथकता की भावनाओ का दमन''

➢के.जी.सैयदेन के अनुसार– ''भावात्मक एकता का अर्थ विभिन्नताओं को समाप्त करना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ राष्ट्रीय एकता एवं मौलिक निष्ठाओं की अधिक विस्तृत व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्तियों को विभिन्न होने व अपनी विभिन्नताओं को सर्तकता तथा निर्भयता से व्यक्त करने का अधिकार है।''

➢ भारत में भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के अभाव में न तो वह आराम से रह सकता है और न प्रगति कर सकता है। यही कारण है कि मनुष्य छोटे–बड़े अनेक सामाजिक समूहों का सदस्य होता है। किसी भी समूह के सदस्यों के बीच एक भावात्मक एकता होती है। देश के तथाकथित कर्णधारों द्वारा राष्ट्रहित को ताक पर रखकर स्वहित हेतु अरबों की सम्पत्ति अर्जित करना और उसे विदेशी बैकों में जमा करना एक चौकानें वाला तथ्य है। जाति और धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक खून खराबा राष्ट्रीय एकता में कमी का सूचक है। सिक्ख भाईयों द्वारा स्वतन्त्र राष्ट्र खालिस्तान की मांग इस क्षेत्र में सबसे बडी चुनौती है। अतः आज आवश्यकता है कि हम राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र से जोडें, उनमें राष्ट्रीय एकता का विकास करे, यदि समय रहते हमने यह सब कार्य नहीं किया तो भारत राष्ट्र का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दु विचारणीय है–

- ➢ राष्ट्र के अस्तित्व की रक्षा।
- ➢ राष्ट्र के शासनतंत्र मे आस्था उत्पन्न करना।
- ➢ विघटनकारी तत्वों का उन्मूलन।
- ➢ क्षेत्रीय संकीर्णता को समाप्त करना।
- ➢ राष्ट्र के विकास एव जीवन स्तर का उत्थान करना।

भारत में भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधाएँ

यह तथ्य सर्वविदित है कि हमने स्वतन्त्रता संग्राम एकजुट होकर लड़ा था। तब हम सबके मन में एक ही विचार था कि हम भारतीय हैं, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष बाद ही हमारे देश में भावात्मक राष्ट्रीय एकता में कमी आने लगी। सरकार का ध्यान इस ओर जाना स्वाभाविक था। सम्पूर्ण शिक्षा जगत में इस विषय पर गोष्ठियाँ आयोजित होने लगी और राष्ट्रीय एकता के अभाव के कारणों और उसके विकास के उपायों पर विचार होने लगा। विभिन्न मुख्य गोष्ठियों, सम्मेलनों और समितियों के इस सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

➢राष्ट्रीय एकता गोष्ठी (1958)– इस गोष्ठी का अयोजन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा किया गया था। इस गोष्ठी मे अनेक शिक्षाविदों ने भाग लिया तथा उनके विचार से राष्ट्रीय एकता में कमी का मुख्य कारण देश में जाति, धर्म के आधार पर भेदभाव बरतना है।

➢इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय एकता समिति (1961)– इस समिति का गठन कांग्रेस के भावनगर अधिवेशन मे किया गया था। इस समिति की सम्मति में जातिवाद धार्मिक संकीर्णता, अशिक्षा, पिछड़ापन व्यक्ति व सम्पत्ति की असुरक्षा राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक है।

➢कुलपति सम्मेलन (1961)– इस सम्मेलन में सम्पूर्ण देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपतियों ने देश में

क्षेत्रवाद, जातिवाद धर्म एवं भाषावाद के आधार पर भेदभाव आदि को राष्ट्रीय एकता के मार्ग मे बाधक तत्वों के रूप में स्वीकार किया है।

➢मुख्यमंत्रियो का सम्मेलन (1961)– केन्द्रीय सरकार ने इस विषय पर विचार हेतु 31 मई 1961 को राज्यों के मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन बुलाया था। इस सम्मेलन मे अनेक केन्द्रीय मंत्रियों ने भाग लिया था। यह सम्मेलन तत्कालीन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ था। एक दिन में इस गम्भीर समस्या पर विचार हो पाना संभव नहीं था। इस कारण इस सम्मेलन को 10 अगस्त से 12 अगस्त तक सम्पन्न किया गया। इस बार इसमें इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय एकता समिति के सुझावों पर गम्भीरता से विचार किया गया। इन्होंने माना कि राष्ट्रीय एकता मे कमी आने के मुख्य कारण जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं साम्प्रदायिकता है, जब तक इन पर काबू नहीं किया जायेगा राष्ट्रीय एकता का विकास नहीं किया जा सकता।

➢डा. सम्पूर्णानन्द भावात्मक एकता समिति (1961–62) इस समिति का गठन केन्द्र सरकार ने 1961 में किया था। इस समिति का कार्य राष्ट्रीय एकता में कमी आने के कारणों का पता लगाना, इन कारणों को दूर करने के उपाय सुझाना एव राष्ट्रीय एकता के विकास हेतु शिक्षा की भूमिका निश्चित करना था। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 1962 में प्रस्तुत किया। निष्कर्ष स्वरूप भावात्मक एकता के मार्ग में बाधक तत्व निम्नलिखित हैं– जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद और साम्प्रदायिकता, युवकों में निराशा और आदर्शों का अभाव। राष्ट्रीय एकता समिति का प्राचीन काल से यह मानना रहा कि विचारों के साथ साथ काम भी किया जाये। भारत–पाक युद्ध के बाद केन्द्र सरकार के नये सिरे से राष्ट्रीय एकता समिति का गठन किया और इसमे सभी राजनैतिक दलों के लोगों को सम्मिलित किया गया। इस बैठक में मुख्य रूप प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता पर चर्चा हुई। 1980 एवं 1984 की बैठक में भी सभी लोगों ने जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयता एवं साम्प्रदायिकता पर चिंता व्यक्त की ।

भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता को बढाने के लिए निम्न सुझाव दिये।

- जातिवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता, एवं प्रान्तीयता आदि विचारों से दूर रहें।
- राज्य को भेदभावपूर्ण नीति से विरत होना।
- वोट की राजनीति नही करना।
- राजनैतिक दलों के लिए राष्ट्रीय मानदण्डों का अभाव।
- आर्थिक विषमता।
- अन्य राष्ट्रों का हस्तक्षेप।
- उदार शिक्षा का अभाव।

शांति शिक्षा हेतु निम्नलिखित शैक्षिक कार्यक्रम होने चाहिए– प्राथमिक स्तर

- बालकों को राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय चिन्ह तथा राष्ट्रीय पक्षी एवं राष्ट्रीय पुष्प आदि का ज्ञान कराया जाये।
- स्वतन्त्रता दिवस तथा गणतन्त्र दिवस आदि राष्ट्रीय पर्व मनाये जायें।
- बाल–दिवस, शिक्षक–दिवस तथा महापुरूषों के जन्म दिवस मनाये जायें।
- महान व्यक्तियों के जीवन से परिचित कराया जाये।

माध्यमिक स्तर

- छात्रों को भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास का ज्ञान कराया जाये।
- छात्रों को विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक दशाओं तथा विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान कराया जाये।
- छात्रों में राष्ट्रीय चेतना विकसित की जाये।
- छात्रों को भारत के आर्थिक विकास का ज्ञान कराया जाये।
- राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में महापुरूषों के व्याख्यान कराये जायें।
- राष्ट्रभाषा का अधिकाधिक प्रयोग किया जाये।

महाविद्यालय / विश्वविद्यालय

➢छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान किये जायें कि विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं साहित्यों तथा संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें।

➢युवक उत्सवों का आयोजन किया जाये तथा इनमें विश्वविद्यालयों के छात्रों को प्रोत्साहित किया जाये।

➢समय–समय पर अध्ययन गोष्ठियाँ तथा विचार गोष्ठियाँ आयोजित की जायें। इन गोष्ठियों में विभिन्न विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाये।

मूल्य–शिक्षाः–मूल्य का शाब्दिक अर्थ है उपयोगिता, वांछनीयता, महत्व। सामान्यतः किसी समाज में जिन आदर्शों को महत्व दिया जाता है और जिनसे उस समाज के व्यक्तियों का व्यवहार निर्देशित एवं नियंत्रित होता है, उन्हें उस समाज के मूल्य कहते हैं। इसके अर्थ को और स्पष्ट करने के लिए डा. राधाकमल मुखर्जी के विचारों को समझा जा सकता हैं, मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत उन इच्छाओं और लक्ष्यों के रूप में परिभाषित किये जा सकते हैं। जिन्हें अनुबंधन, अधिगम या समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा आभ्यान्तरीकृत किया जाता है और जो आत्मनिष्ठ अधिमान, तथा आकांक्षाओं का रूप धारण कर लेते हैं।

मूल्य शिक्षा का महत्व मूल्य शिक्षा का महत्व तो सदैव से रही है, आज भी है और कल भी रहेगा आज तो इसकी महत्ता अत्यधिक है। इसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता हैः–

➢ सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि बिना मूल्यों के मुनष्यों का व्यवहार निश्चित नहीं हो सकता। मनुष्य के आचार–विचार को सही दिशा देने के लिए मूल्य शिक्षा आवश्यक होती है।

➢आज हमारे देश में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में मूल्यों में ह्रास हो रहा है। मूल्यों में ह्रास का अर्थ है, समाज द्वारा स्वीकृत आदर्श एवं मानदण्डों को अपने अन्तःकरण में न उतारना एवं उनके अनुरूप आचरण न करना। हमारे देश की अजीबो गरीब स्थिति है, हम पुराने मूल्य को तो छोड़ते जा रहे हैं, किन्तु नये मूल्यों का निर्धारण नहीं कर पा रहे हैं। अतः आज हमारे लिए मूल्य–शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

➢मूल्य–शिक्षा के तीन प्रमुख पद है संज्ञानात्मक भावात्मक एवं क्रियात्मक। आज स्थिति यह है कि हमें मूल्यों का ज्ञान तो है, परन्तु वे हमारे भावात्मक पक्ष के अंग नहीं हैं। तब उनके अनुसार आचरण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। आज मूल्यों को भावना में उतारने की एवं उन्हें आचरण का आधार बनाने की आवश्यकता है।

सार्वभौमिक मूल्य–सार्वभौमिक मूल्य के सम्बन्ध में जब चर्चा करते है तो ज्ञात होता है कि सार्वभौमिक मूल्य के अंतर्गत वे मूल्य आते हैं जो भारत में ही नही अपीतु सम्पुर्ण विश्व में मान्य हों,। इस सभी के सम्बन्ध में किसी को कोई आपत्ति न हों। सच तो यह है कि विद्वान सार्वभौमिक मूल्यों के विषय में एकमत नहीं है। कुछ विद्वान केवल सत्य को सार्वभौमिक मूल्य मानते हैं, कुछ लोग सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् को तथा कुछ लोग प्रेम, शांति, अहिंसा और सद्व्यवहार को और कुछ लोग प्रेम, सच्चाई और ईमानदारी को। फरवरी 1999 में भारतीय संसद में जो एस.वी. चाव्हाण समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई थी उसमें सत्य, सदाचरण, शांति, प्रेम और अहिंसा को सार्वभौमिक मूल्य माना गया है। मूल्य–शिक्षा की प्रासंगिकता आज के संदर्भ में–आज प्रश्न उठता है कि मूल्य शिक्षा किसे तथा कैसे दी जाये। इस पर विचार करते हुए विद्वानों का विचार बना कि मूल्य शिक्षा देने से पूर्व निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है–

➢मूल्य निर्माण के स्रोत– समाज, संस्कृति, धर्म, अर्थतन्त्र, राजतन्त्र।

➢मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया– समाजशास्त्रियों की दृष्टि से मनुष्यों में मूल्यों का निर्माण समाजीकरण की प्रक्रिया के साथ–साथ होता है। उनका स्पष्टीकरण है कि बच्चा जिस समाज की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेता है, उसी की भाषा सीखता है, उसी के व्यवहार मानदण्डों आदि को अपनाता है और इस प्रकार उस समाज में समायोजन करता है। धीरे–धीरे उसमें इनके प्रति स्थायी भाव बन जाता है, यह स्थायी भाव उसके व्यवहार को निर्देशित एवं नियंत्रित करने लगता है और हम कहते हैं कि उनमें यथोचित मूल्यों का निर्माण हो गया। आज मानव के जीवन में मूल्य शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता

है आज के परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित तथ्यों में देखा जा सकता है–

➢परिवार एवं मूल्य शिक्षा– मूल्य आधारित आचरण, कहानी कथन, रेडियो, टेलीविजन कार्यक्रम विश्लेषण, समाज द्वारा स्वीकृत आचरण की पुष्टि पुरस्कार एवं दण्ड।

➢समुदाय और मूल्य शिक्षा– मूल्य आधारित शिक्षा, मूल्य प्रधान नाटकों का मंचन, जनसंचार के साधनों का प्रयोग, समाज सेवा कार्य, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा, कष्ट सहन करने के लिए मानसिक तैयारी।

➢विद्यालय और मूल्य शिक्षा– मूल्य प्रधान पर्यावरण, विद्यालय विषयों के शिक्षण के साथ मूल्य शिक्षा, पाठ्य सहगामी क्रियायें।

विश्व शांति स्थापना हेतु शिक्षकों के दायित्व–

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा का बहुत बडा योगदान होता है। देश की शिक्षा व्यवस्था के अनुरूप ही देश का विकास होता है। शिक्षा व्यवस्था की सफलता उसके प्रभावशाली क्रियान्वयन पर निर्भर करती है और यह प्रभावशाली क्रियान्वयन उस देश की सरकार, शिक्षानीति, प्रशासन, शैक्षिक संस्थाओं व शिक्षक पर निर्भर करता है। शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षक ही होता है, क्योंकि शिक्षक ही विद्यार्थी के सम्पर्क में रहता है, छात्रों में ज्ञान, संस्कार, मूल्य, दृष्टिकोण व अभिवृत्तियों का संचार करने वाला शिक्षक ही होता है। शिक्षक ही विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए उत्तरदायी होता है।

समस्त विश्व समुदाय के शिक्षकों का यह कर्तव्य है कि वह समूची विश्व की जनता जो उसके समक्ष छात्र रूप में उपस्थित हुई है, उनमें शांति शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार तथा साथ ही साथ उन्हें इसके महत्व को भी समझाये। इसके लिए शिक्षकों को कुछ दायित्वों का भी निर्वहन करना पडेगा। यहाँ हम शिक्षकों के दायित्वों के सम्बन्ध में अपने विचार निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर रहे हैः–

➢ सर्वप्रथम विश्व के समस्त देशों के शिक्षकों की शांति शिक्षा हेतु स्वयं जागरूकता एवं सहिष्णुता के दृष्टिकोण को अपनाना होगा।

➢ शिक्षकों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों की संस्कृति, धर्म, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित ज्ञान का आदान–प्रदान बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए ताकि विभिन्न देशों के नागरिकों के बीच सहिष्णुता, प्रेम, सौहार्द को बढाया जा सके। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों, सेमिनारों व सम्मेलनों को अधिक संख्या में आयोजित किया जाना चाहिए।

➢ शांति शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार हेतु शिक्षकों के अध्ययन दल एवं प्रतिनिधित्व दल बडी संख्या में एक–दूसरे देशों में भेजे जाने चाहिए।

➢ शांति शिक्षा के प्रसार हेतु शिक्षकों को चाहिए कि अपने छात्रों में पड़ोसी राष्ट्रों व विश्व के अन्य राष्ट्रों से विवादपूर्ण मुद्दों पर सरल, सकारात्मक व सहिष्णुतापूर्ण दृष्टिकोण का विकास करें। उग्रता के स्थान पर सहिष्णुता, विवाद के स्थान पर समझौता, शांतिपूर्ण हल व शांतिपूर्ण सम्बन्धों हेतु मानस बनाये जाने हेतु प्रयास किये जाने चाहिए।

➢ विश्व के सभी देशों के शिक्षकों द्वारा शांति एवं निशस्त्रीकरण पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सप्ताह भी मनाया जाना चाहिए।

➢ शिक्षकों द्वारा शांति शिक्षा हेतु नवीन क्षेत्रों में अनुसंधान, नवीन गतिविधियों व प्रयासों को क्रियान्वित करना चाहिए। अनुसंधान के परिणामों को विश्व समुदाय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

➢शांति शिक्षा की अवधारणा को पाठ्य सहगामी क्रियाओं के प्रयोग द्वारा भी विकसित किया जा सकता है।

निष्कर्षः–

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान होता है। देश की शिक्षा व अवस्था के अनुरूप ही राष्ट्र का विकास होता है। हमारी भारतीय संस्कृति सदैव विश्व बंधुत्व का नारा देती चली आ रही है उसके अनुसार ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' अर्थात सम्पूर्ण पृथ्वी ही हमारा परिवार है। सम्पूर्ण मानव चाहें तो किसी भी जाति, धर्म, प्रदेश, रंग या लिंग के हों, ईश्वर की संतान हैं। अतः हमें उन सबके कल्याण हेतु कार्य करना

चाहिए। यह एक ऐसा उदारवादी दृष्टिकोण है, जो मानव की समस्त संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर मानव कल्याण के लिए प्रेरित करता है। विश्व के समस्त देशों के निवासी मेरे बन्धु–बान्धव हैं। इस सम्बंध में वेदों में भी वर्णित है–

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानवस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति।।

अर्थात् सभी मानव जन समान सुख पहुँचाने वाले मानवोचित संकल्पों को ग्रहण करें किसी के संकल्प का किसी के संकल्प से विरोध न हो, सबके हृदय समान एवं मिले हुए हो प्रत्येक का मन समता के प्रेम से भरा हो, जिससे सुख व समृद्धि की वृद्धि हो। विश्वशांति हेतु सम्पूर्ण मानव के कल्याणार्थ वेदों में निम्न मंत्र का भी उल्लेख है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत्।।

शांति शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व विश्व शांति की स्थापना के लिए एक अवधारणा के रूप में शनै–शनै विकसित होती हुई आज एक वट वृक्ष के रूप में पुष्पित व पल्लवित है। आज विश्व का प्रत्येक देश व प्रत्येक नागरिक शांति शिक्षा की आवश्यकता को तीव्रता से अनुभव करता है व इसके बढते जा रहे महत्व को समझता है। विभिन्न देशों की सरकारों ने शांति शिक्षा को शिक्षा नीति में स्थान देकर इस बात पर मुहर लगा दी हैं। इस प्रकार शिक्षक यदि अपने दायित्वों का निर्वाह पूरी लगन, ईमानदारी एवं सक्रियता पूर्वक करें तो हम निश्चित रूप से शांति–शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति शिक्षा का प्रचार प्रसार कर विश्व की जनता को शांति सूत्र में बाँधने में सफल हो सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ–सूची

1. शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोगः प्रो. रमन बिहारी लाल, आर लाल बुक डिपो मेरठ द्वितीय संस्करण 2006–07
2. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षकः डा. जी.एस. वर्मा एवं सविता कुमारी, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ, नवीन संस्करण 2011
3. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षाः प्रो.एम.एस. मित्तल, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ संस्करण 2007
4. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षकः एन.आर.स्वरूप सक्सेना, डा. शिखा चतुर्वेदी, डा.के.पी.पाण्डेय, आर लाल बुक डिपो, संस्करण 2006
5. शिक्षा का सामाजिक आधारः डा. सीताराम जायसवाल, प्रकाशन केन्द्र रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड लखनऊ, चतुर्थ संस्करण
6. शिक्षा के तात्विक सिद्धान्तः डा. एस.के. अग्रवाल, राजेश पब्लिशिंग हाउस शंकर सदन, 729, पी0एल0शर्मा रोड मेरठ, 23 संस्करण 1991–92
7. शिक्षा एवं भारतीय समाजः डा. रामपालसिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
8. शिक्षा के सिद्धान्तः पाठक एवं त्यागी, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा छठा संस्करण 1986
9. भारतीय शिक्षा सिद्धान्तः सुबोध अदावल, गर्ग ब्रदर्स प्रयाग, छठां संस्करण–1966
10. Dr. Bhaskar Rao, Glaobal perception of peace Education,1996, Discovery publishing house, Delhi.
11. Mass weigerp, K, Peace studies as Education for Non violent social change the Annals of the American academy, 1989.
12. Mc conaghy, T.Peace Education a controversial issue? 1986.
13. Prakash, M, War and Peace: Education far surviw: Sustainiblity and Flourshing American journal of Education, 1990.
14. Propects UNESCO and Education for peace vol. XV, no.-3, 1985.
15. Kneeshaw, S & B, How shall we tell the children? The social studies, 1986.